International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
ISSN -2393-8048, July-December 2022, Submitted in December 2022, iajesm2014@gmail.com

हिन्दी कथा साहित्य में धार्मिकता एवं चेतना : एक विवेचना

शिवदीप सिंह सेंगर, सनराइज विश्वविद्यालय अलवर, राजस्थान
डॉ. गोविन्द द्विवेदी, सह–प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, सनराइज विश्वविद्यालय अलवर, राजस्थान

प्रस्तावना

राजनैतिक क्षेत्र चेतना विभाजन की त्रासदी के साथ जुड़ा है राजनैतिक मोहभंग का अध्याय। वह त्यागी, स्वप्नदर्शी, उदार पीढ़ी, स्वार्थलोलुप शासक बन गयी। एक अजीब तरह की आपाधापी का दौर शुरू हुआ है। चारों ओर राजनीतिक वर्ग पनपने लगे, जो किसी तरह जनता का रक्त चूसने और अपने लिए सुविधाएँ बटोरने में लग गया। स्वार्थपरता, जातिवाद, भाई–भतीजावाद, कालाबाजारी, बेईमानी आदि का जोर चला उसने जनता को मोहभंग की स्थिति में जबरदस्ती लाकर खड़ा कर दिया।

आगे कमलेश्वर कहते है कि– 'भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, जातिवाद, प्रांतवाद, जैसे फोडे राष्ट्र के शरीर पर और भी भयानक और नग्न हो कर बदबू देने लगे। एक ओर शासन में नौकरशाही, दूसरी ओर युवा, बुद्धिजीवी ने पूरे तंत्र को नकार दिये।'

भीष्म साहनी की कहानी 'अमृतसर आ गयाश और कृष्णा सोबती का सिक्का बदल गया' स्थिति सापेक्ष और परिस्थिति सापेक्ष क्रूर मानसिकता का परिचय देती है। 'अमृतसर आ गया' मेंदुबला–पतला बाबू भौगोलिक स्थिति बदलते ही हत्या सा बन जाता है और उससे पहले मुसलमान अपने क्षेत्र में उम्र थे और बाबू भयभीत था। इसी प्रकार 'सिक्का बदल गया' के साहनी और शेरा की परिस्थिति में परिवर्तन के समानान्तर मानसिकता में परिवर्तन हो जाता है।

बँटवारे के दौरान औरतों के अपहरण और बलात्कार जैसी प्रत्यक्ष घटनाओं के कारण पैदा हुई मानसिकता विकृतियों और ग्रंथियों से कई कहानियों की कथावस्तु निर्मित हुई है।

विभाजन का आधार दो राष्ट्रों के सिद्धान्त ही राजनीति थी, किन्तु इस राजनीति के कारण हिन्दू और हिन्दू के बीच, मुसलमान और मुसलमान के बीच सांस्कृतिक संकट पैदा हो गया है। ये कहानियाँ विभाजन की राजनैतिक त्रासदी का मानवीय और मनोवैज्ञानिक दस्तावेज है। विभाजन का हादसा भारतीय समाज को अनेक वर्षों तक होता रहा है।

राजनीतिक व्यवस्था शुद्ध खोखलापन की साबित करती है। लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था मुट्ठीभर राजनीतिज्ञों, की मुट्ठी में मात्र खिलौने की तरह होते है। डॉ. श्यामसुन्दर दास की कहानी 'आत्महत्या' में नेताओं के खोखले नारों और आश्वासनों की परिणिति का यथार्थ चित्रण है, जो कभी पूरे नहीं होते, किन्तु जिनके सहारे नेता लोग जनता में लोकप्रियता पाकर चुनाव जीत जाते है और कुर्सियों पर बैठ जाते है। सज्जनता के मुखौटों में यह स्वार्थी एवं भ्रष्ट नेता सामाजिक और मानवीय नैतिकता की हत्या कर डाल देते है। भ्रष्ट राजनीति और जन साधारण में राजनैतिक चेतना के अभाव में लोकतंत्र का व्यर्थता का बोध इस कहानी में सृजनात्मक स्तर पर व्यक्त हुआ है।

समकालीन हिन्दी कहानी में राजनीति का रंग और अधिक गहरा हो गया। इस राजनीतिक दुष्चक्र के साथ–साथ आर्थिक शक्तियाँ भी इसके साथ जुड़ी है। परिणामतः राजनीति और अधिक शक्तिशाली हो गई है, जिससे मनुष्य की सहज जीवन प्रक्रिया को भी घोर यंत्रणा में परिवर्तित किया है। स्वतंत्रता की आकांक्षा से देश की अधिकांश जनता आन्दोलित हुई है और नेताओं के आश्वासनों एवं नारों के आधार पर स्वराज्य की कल्पना से अभिभूत भी हुई, किन्तु राष्ट्र के पुनर्निर्माण को कोई संकल्पना राजनेताओं के पास नहीं थी। वस्तुतः उनके पास आजादी के समय के जैसे गंभीर नेतृत्व का अभाव था। परिणामतः समूची राजनीति एक भ्रष्ट चक्र में बुरी तरह से घिर गई। उनके पास न तो जनकल्याणकारी दृष्टि थी और नहीं किसी प्रकार की दायित्व भावना थी। डॉ. कीर्ति केसर ने समकालीन हिन्दी कहानी के विविध संदर्भ में इन तमाम राजनैतिक परिदृश्य के संदर्भ में कहा है कि– 'राष्ट्र निर्माण की आधारभूत और दिशा एवं स्वरूप क्या होगा ? इसकी उसके पास न तो कोई परिकल्पना थी और न ही समझा अतः एक छोटा–सा वर्ग ही राष्ट्र का भाग्य विधाता बन गया. वह भी भावी राष्ट्र की कल्पना को लेकर कई हिस्सों में बँटा हुआ। परिणामतः स्वतंत्रता के जिस भ्रामक प्रत्यय को लेकर आम जनता आल्लाहित हो उठा था, वह कुछ ही समय बाद टूटने लगा।'

'छोटे किसानों की आर्थिक एवं भूमि संबंधी अनेक समस्याओं का जन्म हुआ। जमींदारों का स्थान बड़े किसानों ने लिया। उनका शोषण जमींदार और उसके कारकुनों के स्थान पर पुलिस तथा भ्रष्ट वितरण प्रणाली द्वारा होने लगा। नगरीय समाज के जीवन में प्रशासनिक सेवाओं में भ्रष्टाचार की त्रासदी तो मध्यमवर्गीय जीवन की नित्यप्रति एक अनुभव है, जो कि प्रशासन की स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार का आतंक, न्यायालयों में असुरक्षा, सरकारी सेवाओं में रिश्वतखोरी, भाई–भतीजावाद आदि के रूप में प्रकट हुआ।'

समकालीन कहानी में ईमानदारी, नैतिकता, आदर्श जैसी चीजों का कोई महत्व नहीं रहा। वस्तुतः अराजक सिद्धान्तहीन गुण्डा तत्वों से परिपूर्ण व्यवस्था ही इस तंत्र की घोर विफलता का कारण है। टुच्ची, स्वार्थपरक राजनीति ने आदमी को इतना असुरक्षित कर दिया है कि उसकी

निर्णय शक्ति, सत्य–असत्य का विवेक, न्याय–अन्याय को महसूस करने की शक्ति का भी क्षय हो रहा है।

रवीन्द्र कालिया के कहानी संग्रह के नाम ही 'गरीबी हटाओय है। माहेश्वरी ने 'मृत्युदण्ड' कहानी में 'गरीब हटाओ' के नारे खूब पर्दाफाश किया है, 'यह एक तमाशा शुरू किया है सालों ने! हुंह! गरीबी हटाओं! जैसे गरीबी इनके घर की नौकरानी है कि जब चाहा कान पकड़ कर सड़क पर खड़ा कर दिया। गरीबी को जिन्हें हटाना होता है, वे पहले अमीरों को हटाते।'

समकालीन कहानी लेखन में थोड़ा लिखकर प्रतिष्ठा पाने वालों में रमेशचंद्र शाह का अपना स्थान है। बढ़ती महंगाई, अमीर–गरीब के बीच बढ़ती खाई आदि थीम पर कुछ कहानियाँ लिखी है, जिनमें वर्तमान भ्रष्टाचार भी शामिल है। जीवन के विराट् भ्रष्टाचार से लड़ सकने की अपनी असमर्थता और नंपुसकता की तिलमिलाहट से जीवन की विसंगति और व्यर्थता का एहसास घर गया है।

धार्मिक क्षेत्र में चेतना – वस्तुतः मनुष्य की कर्म के प्रति आसक्ति ही ईश्वरीय अस्तित्व के प्रतिषेध के मूल में विचारधारा रही है, इसलिए नीत्से जैसे अस्तित्ववादी विचारकों ने भी ईश्वर की मृत्यु की संभावना व्यक्त की है।

समकालीन कहानी में भी ईश्वरीय सत्ता के प्रति आस्थावादी और अनास्थावादी दोनों दृष्टिकोण दिखाई देते है। समकालीन कहानी में बाह्य आडम्बर और पाखण्ड का परित्याग करने का भाव दिखाई देता है। जहाँ ईश्वरीय सत्ता का प्रश्न है आज भी मनुष्य के अंतरंग में ईश्वरीय सत्ता की अनुकूज अवश्य दिखाई देती है। निराशा में व्यक्ति ईश्वरीय आस्था की ओर मुड़ता है।

रामदरश मिश्र की कहानी में ईश्वर की अनुकम्पा पर कृपा दृष्टि पर विश्वास करके निश्चित बैठने की प्रवृत्ति का खण्डन हुआ है। ईश्वर के चमत्कार या वरदान पर कोई अर्थ नहीं रह गया है।

मोहन राकेश की कहानी 'परमात्मा का कुत्ता' में भी ईश्वर पर आस्था का स्वर मुखरित हुआ है। यहाँ भी यह आस्था कर्म की शान्ति देती है, प्रेरणा देती है। भाग्य और भगवान के भरोसे निष्क्रिय होकर बैठने की प्रवृत्ति का निषेध करती है।

कुछ कहानियाँ अस्तित्ववादी चिन्तन को ओढ़कर लिखी गई है। ईश्वर को अस्वीकार अथवा उनकी अलौकिक शक्ति में अनास्था की अभिव्यक्ति की गई है। सुधा अरोधा की कहानियों में जहाँ ईश्वर का उल्लेख है, उसके प्रति अनास्था का अनादर का भाव ही अभिव्यक्त हुआ है। उसने ईश्वर को जैसे 'अलाउद्दीन का चिराग' समझ लिया है। गिरिराज किशोर ने अपनी एक कहानी में एक ईश्वर की मौतश कहानी का नायक कहता है कि– 'ईश्वर हमारी करेंगे–बात मेरे कानों में गूंजती रहती है, उस बात पर विश्वास करना चाहा. परन्तु मैं उसे उस पर हँस भर सका। मेरे अंदर जो बिना धर्म का ईश्वर था... वह धीरे–धीरे मरता गया और अब बिल्कुल मर गया।'

वस्तुतः समकालीन कहानी में ईश्वर के प्रति अनास्था और अस्तित्व के प्रति निषेध का स्तर भी प्रमुख रूप से उभरा है किन्तु यह भी सच है कि कहीं– कहीं अनास्था और निषेध को इतने सतही ढंग से व्यक्त किया है कि ईश्वर की अवधारणा कर अस्वीकार अपने आप में हास्यास्पद बन गया है। कहीं आस्था की अवस्था दिखाई भी देती है तो मात्र ऊपरी सतह पर ही दिखाई देती है।

धर्म की मान्यता ब्रह्मचर्य, वैराग्य, अनासक्ति और अन्य शारीरिक यातनाओं से मुक्ति मिलती है और आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाना ही मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य है– यद्यपि इस विचारधारा का विरोध नहीं हुआ है। अधिकांश रूप में इस मान्यता के प्रति व्यंग्य और आक्रोश उभरा है।

योग साधना, वैराग्य, ब्रह्मचर्य आदि के प्रति अमानवीय यातनाएँ भी तथाकथित साधकों को झेलनी पड़ी है। अनेक साधकों को उनकी इच्छा के विरुद्ध साधन के मार्ग में ढकेल दिया जाता है। कहीं–कहीं यह भी हुआ कि साधिका–यदि वह स्त्री है और ब्रह्मचारिणी है, तो तथाकथित उनके योगगुरु ही उसे भोग की साधन सामग्री के रूप में व्यवहूत करने लगे अबोध बालिकाएँ, जिसकी आयु 14 से 15 वर्ष के भीतर भी नहीं रहती, ब्रह्मचर्य के कठोर साधना मार्ग में उसे संलग्न किया जाता है, जबकि वह ब्रह्मचर्य आदि की धारणा को समझती भी नहीं है। जैसे 5–6 वर्ष के बालक और बालिका माता–पिता की इच्छा से विवाह की रस्म करते है, जबकि उसकी आयु विवाह को समझने लायक ही नहीं है। इसी प्रकार कठोर साधना मार्ग में साधक की परिपक्कता के बगैर उसे साधना मार्ग में प्रवृत्त करना हास्यास्पद ही नहीं औचित्यपूर्ण भी नहीं कहा जा सकता है।

वैराग्य, योग इत्यादि पाखण्ड के कारण कभी–कभी निरक्षर बच्चों को अमानवीय यातनाएँ सहना पड़ती है। समकालीन कहानी में तर्कसंगत धार्मिक संगति की सुव्यवस्थित व्याख्या की गई है। 'जीवन दुःख का बन्धन है और जीवन का उद्देश्य इस बंधन से मुक्ति प्राप्त करना है।' इस प्रकार की बात तर्कहीन और असंगत मालूम होते है।

कापालिक साधुओं की दुनिया की भयावहता तो कल्पनातीत है। ये लोग तथाकथित सिद्धि की खातिर श्मशान में लाशों और जलती चिताओं पर साधना करते है। हड्डियों में भरकर नशीले पेय पीते है।

ISSN -2393-8048, July-December 2022, Submitted in December 2022, iajesm2014@gmail.com
चिताओं में अधजले लाशों के मांस खाते है और मायामुक्त होने का दावा करते है। तरह–तरह की वेशभूषा बनाकर लोगों में भय और आतंक फैलाते है। योगी कापालिक का चित्र इलाचंद जोशी ने अपनी रचना 'कापालिक' में खींचा है– 'यद्यपि उस अखाड़े के सभी साधु स्पष्टतः ही लठ्ठवत, मूर्ख, भोजन भट्ट और आत्मसुखाभिलाषी थे। तथापि न जाने क्यों उनका संसर्ग मुझे प्रिय लगने लगा। मैंने देखा कि घर और बाहर के सभी बंधनों से मुक्त है– केवल अपने पेट के बन्धनों को छोड़कर और पेट का बंधन भी बहुत कष्ट कर नहीं था– इसलिए कि उन्हें इस बात का पूरा विश्वास था कि आराम से लेटे–लेटे भरपेट भोजन पाना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। सेठों के रुपयों से चलाये जाने वाले भण्डारे के प्रबंध से उन्हें प्रतिदिन नियमित रूप से भरपेट भोजन मिल जाता था। मैं यह भी देख रहा था कि लोग समस्त विश्व को तृणवत् समझते थे और दिन भर खोलकर देश के समस्त राजनीतिक नेताओं तथा सुधारकों का निर्द्धद्ध और निर्भीक भाव से ऐसी ऐसी विकट गालियाँ दिया करते थे. जिन्हें सुनने पर मैंने किसी जमाने में कान बंद किये करते थे।'

स्त्री की नैतिकता, शारीरिक पवित्रता को धार्मिक रूढ़ियों और विश्वासों ने बुरी तरह से जकड़ा है। शिक्षित स्त्री को भी उचित सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता। विधवा का जीवन पूर्णतः धार्मिक रुद्रियों से जकड़ा हुआ था। यद्यपि समकालीन दृश्य में इस प्रकार के चारित्रिक बंधन शिथिल हो रहे है। प्रायः प्रौढ बाल बच्चेदार महिलाएँ पुनः विवाह नहीं करती, किन्तु निसंतान युवा विधवा पुनर्विवाह करने लगी है।

अज्ञेय की कहानी 'रमन्ते तंत्र देवता' में हमारी धार्मिक मान्यताओं के खोखलेपन और इनमें रुद्र अन्धविश्वास को त्रासदी को चित्रित कर मानवीय करुणा को जगाया है। स्त्री का पति केवल इसलिए उसे अपवित्र समझता है. क्योंकि साम्प्रदायिक दंगों से उसने अपनी जान बचाने के लिए गुरुद्वारे में शरण ली हैं और एक नेक इन्सान के घर में रह रही है। सारा धर्म–विवाह, बन्धन, सारे कर्मकाण्ड इतनी सी बात पर कुरबान हो जाते है।

समकालीन कहानी में धार्मिक रूढियों, परम्पराओं और अन्धविश्वासों के प्रति केवल आक्रोश ही व्यक्त नहीं किया गया है, अपितु उसे वैज्ञानिक खोजों के परिवेश में पूर्णतः नकार भी दिया है। धर्मो के मूल में सदैव ईश्वरीय सत्ता का भय ही बना रहता है। यह निश्चित है कि अन्धविश्वासों का अन्त भी स्वाभाविक ही है।

मानववाद में भी नैतिकता का केन्द्र ईश्वरीय सत्ता नहीं है। मानव मात्र का हित ही सर्वोपरि है। तमाम नैतिक मूल्यों की कसौटी मानव मात्र की भलाई हैं। सम्भवतः ईश्वर का विश्वास हमारे रक्त में, हड्डियों में इतना रचा–बसा है हम उसे पसीने की तरह पोंछ कर उससे मुक्त नहीं हो सकते। समकालीन कहानी में मानवीय नैतिक बोध समाज, परिवार, व्यवस्था द्वारा व्यक्ति के आर्थिक नैतिक शोषण के विरुद्ध स्वर में मुखरित हुआ है। मानव नाम के प्रभाव से व्यक्ति की सत्ता को महत्व मिला है।

SHRADHA EDUCATIONAL ACADEMY

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. कमलेश्वर – नयी कहानी की भूमिका
2. नरेन्द्र मोहन – सिक्का बदल गया, अज्ञेय ये तेरे प्रतिरूप
3 डॉ. कीति केसर – समकालीन हिन्दी कहानी के विविध संदर्भ
4. माहेश्वरी – मृत्युदंड स्पर्श
5. मोहन राकेश – परमेश्वर का कुत्ता
6 गिरिराज किशोर – चार मोती बेआब